

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र

महामहिम आचार्य

श्रीमद् अमृतवाग्भवप्रणीत

सटीक

अमृत स्तोत्र संग्रह

टीकाकार

डा० बलजिन्नाथ पंडित
एम० ए०, पीएच० डी०



संकलन कर्ता:—
श्री रत्नलाल जैन
एम०ए० एल० एल० बी०

प्रकाशक:—
विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण
धार्मिक संस्थान
दिल्ली

प्रथम संस्करण

मूल्य ३/ रु०

पुस्तक प्राप्ति स्थानम्:—
श्री रत्नलाल जैन,
कोषाध्यक्ष/प्रचारमंत्री
विद्वद्वरकल श्रीराधाकृष्ण धार्मिक संस्थान,
मकान नं० ए-१ दिल्ली हाई कोर्ट,
शेरशाह रोड, नई दिल्ली-३

इस पुस्तक के मुद्रण का पूर्ण व्यय
श्रीयुत के० के० आनन्द,
ए-३/८ पश्चिम-विहार, नई दिल्ली
ने वहन किया है। एतदर्थ उनको अनेकानेक
धन्यवाद।

मुद्रक:—
आचार्य श्रीकण्ठ शास्त्री, एम० ए०
धर्म प्रेस,
१०३-ए कमलानगर, दिल्ली-७



अमृत स्तोत्र संग्रह

(हिन्दी भाषान्तर सहित)

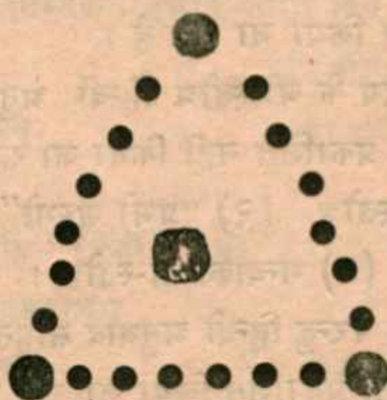


लेखक

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र

महामहिम

श्री अमृतवाग्भवाचार्यः



प्रकाशक

विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान

दिल्ली

प्रास्ताविकम्

आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भवजी महाराज के द्वारा समय समय पर विरचित स्तोत्रों में से कुछ एक का संग्रह करके उनके निर्वाण दिवस पर भक्त जनों के सन्तोष और आह्लाद के लिए श्री विद्वद वरकल राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। स्तोत्रों का संग्रह श्री रत्नलाल जैन ने किया। उनका मिलान मैंने आचार्य महोदय के स्वहस्तलिखित लेखों के साथ किया है। तदनन्तर संस्कृत भाषा को भली भान्ति न समझ सकने वाले भक्त जनों के हित के लिए मैंने इस संग्रह का अनुवाद राष्ट्र भाषा हिन्दी में किया।

आचार्य महोदय ने समय समय पर भिन्न भिन्न स्थानों में रहते हुए इन स्तोत्रों का निर्माण किया। प्रत्येक के अन्त पर निर्माण काल का और स्थान का उल्लेख उन्होंने स्वयं कर रखा है। अतः उस विषय को यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। निर्माण काल क्रमानुसार इन स्तोत्रों का सम्पादन किया जा रहा है।

आचार्य महोदय के जो स्तोत्र हिन्दी अनुवाद सहित छप चुके हैं, उनको इस संग्रह में प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। ऐसे स्तोत्र हैं— (१) श्री परशुराम स्तोत्र, (२) "प्रभो शम्भो" स्तुति, (३) महानुभव शक्तिस्तोत्र और (४) मन्दाक्रान्ता-स्तोत्र। श्री त्रिगुणेश्वर स्तोत्र यद्यपि छप चुका है, परन्तु हिन्दी अनुवाद सहित नहीं छपा है। अतः उसे इस संग्रह में पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

आचार्य महोदय की एक लिखित पंक्ति के अनुसार उनके द्वारा विरचित (१) बालाम्बिकास्तवः और (२) श्रीकृष्णगीत-दशकम् इन दो स्तोत्रों को किसी महेश वकील ने खो डाला। अभी तक ये दो स्तोत्र कहीं मिले नहीं। अतः इन्हें इस संग्रह में प्रकाशित नहीं किया जा सका।

आचार्य महोदय के द्वारा निर्मित और हमें उपलब्ध हुए स्तोत्रों में से श्री परमशिवस्तोत्र सबसे प्राचीन है। इस स्तोत्र को उन्होंने परिव्राजक बनने से पहले वाराणसी में ही वि० सं० १६८३ में लिखा था। यह स्तोत्र सैद्ध दर्शन के सिद्धांतों की ओर निर्देशों से भरा पड़ा है। अतः इसके अनुवाद मात्र से पढ़ने वालों को विशेष लाभ नहीं होगा। इस पर एक विस्तृत टीका की भी आवश्यकता है। फिर उस शास्त्र सिद्धांतों से भरी टीका का प्रकाशन कोई सिद्धदर्शन को जानने वाला विद्वान् ही कर सकता है। अतः उसका प्रकाशन फिर कभी किया जाएगा, प्रकृत संग्रह में नहीं। वैसे प्रकाशन उसका शीघ्र ही होगा।

श्री स्वाध्याय-महिम-स्तोत्र काफी विशालकाय है। उस पर श्री रमानन्द शास्त्री ने पद्यानुवाद भी लिखा है। उसके प्रकाशन के लिए भी काफी समय चाहिए। अतः उसे भीं फिर कभी प्रकाशित किया जाएगा। अस्तु।

अतः प्रकृत संग्रह में निम्नक्रमानुसार स्तोत्र दिये हैं—

स्तोत्र	निर्माणकाल (वि० सं०)
(१) पवननन्दनाष्टकम्	१६८६
(२) पर-शिवाष्टकम्	,,
(३) "बालकं मां पाहि" (देवी स्तोत्र)	,,
(४) महागुरु श्रीकृष्णस्तोत्रम्	,,
(५) बालकृष्ण दशकम्	१६८७
(६) रामाश्वघाटी चतुष्टयम्	,,
(समस्यापूर्तिमयम्)	
(७) अवधूताभिवादनम्	२०१०
(८) त्रिगुणेश्वर-शिव-स्तोत्रम्	२०२२
(९) आपूपिकेश्वरस्तोत्रम्	२०२३

आचार्य महोदय ने स्तोत्र काव्यों के अतिरिक्त कई एक वर्णनात्मक काव्य भी लिखे हैं जिनमें उन दिव्य दर्शनों का वर्णन है जो उन्हें समय समय पर स्थान स्थान पर होते रहे। उनमें से बहुतों का संक्षिप्त वर्णन 'सिद्धमहारहस्यम्' में किया गया है। कई एक का विस्तार से भी वर्णन लिखा गया है। उनमें से "सञ्जीवनी दर्शनम्" पृथक् पुस्तक के रूप में छपा है और "दैशिक दर्शनम्" को 'सिद्ध महारहस्यम्' के अभिनव संस्करण के साथ ही प्रकाशित किया गया है। उन्होंने सुभाषितात्मक काव्य भी लिखे हैं, जिनमें से "अमृत सूक्ति पञ्चाशिका" छपी है। उनकी शास्त्र रचना में से जो ग्रन्थ छपे हैं उनमें बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं (१) श्री आत्मविलास, (२) श्रीविंशतिका शास्त्रम्, (३) श्री सिद्ध महारहस्यम्, और (४) श्री राष्ट्रालोक। उनका "राष्ट्र सञ्जीवनभाष्य" तो विशेष महत्त्व का नीति शास्त्र है जो अभी तक अमुद्रित पड़ा है। हिन्दी भाषा में उनके दार्शनिक विचारों का संक्षिप्त संग्रह "वस्तु स्थिति क्या है" इस शीर्षक से कई एक लेखों के रूप में श्री स्वाध्याय के अङ्कों में छपा था।

आचार्य महोदय के द्वारा स्थापित संस्थाओं में से श्री स्वाध्याय सदन तो समाप्त हो चुका है। परन्तु (१) श्रीपीठ सैद्ध दर्शन शोध संस्थान; जम्मू। (२) श्री अमृतवाग्भव शोध संस्थान, जयपुर। (३) विद्वद् वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान, दिल्ली।

नामक तीन संस्थान आचार्य महोदय के ग्रन्थों का धीरे धीरे प्रकाशन करने का यत्न कर रहे हैं। प्रकृत स्तोत्र संग्रह भी उसी यत्न का एक फल है।

हम धर्म प्रेस कमलानगर दिल्ली के अध्यक्ष श्रीकण्ठ शास्त्री के आभारी हैं जिन्होंने प्रकृत पुस्तक को उचित समय पर शुद्ध एवं सुन्दर रूप में मुद्रण कर हमें सहयोग दिया। धन्यवाद।

—डा० बलजिन्नाथ पण्डित

श्री गुरुदेव



अनन्त श्री विभूषित (ब्रह्मलीन)
स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज
(सं. १९६० से २०३९)

श्रद्धांजलि

कश्चिद् विद्याधरनिवसनात् प्राप्य मानुष्यभावं
शापाद् भ्रष्टो निजगुरुपदाद् गुर्ववज्ञाजदोषात्।
राजा भूत्वा प्रथमजनने विप्रबालस्ततो : द्वि-
जातिस्तुर्ये जनुषि च पुनर्विप्रभावं प्रपेदे ॥

कालचक्र की गति कितनी तीव्र होती है, यह इसी से प्रकट है कि अनन्तश्रीविभूषित, प्रातः स्मरणीय, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पूज्यपाद श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज को निर्वाण प्राप्त किये हुए एक वर्ष का समय आंख झपकते बीत चुका है। परन्तु ऐसा लगता है मानो यह अभी कल की बात हो। यह सहसा विश्वास करना कठिन है कि अब वे सशरीर हमारे मध्य विद्यमान नहीं है। परन्तु तभी वास्तविकता धीरे-धीरे हमारे मानस पटल पर अपनी पकड़ को जमाने लगती है और हृदय के नकारने पर भी मस्तिष्क के किसी अज्ञात कोने से उन के अभाव का भास होने लगता है।

हम में से कई एक से उनका गुरु-शिष्य सम्बन्ध था, कई से घनिष्ट परिचय और कुछ एक से मात्र औपचारिक परिचय। तथापि जो भी उनके सान्निध्य में आया, वह उनका हो कर रह गया। उनकी आकृति, वेषभूषा स्वभाव, आहार-विहार, सभी कुछ इतना सरल था कि अपरिचित से अपरिचित व्यक्ति भी एक बार भेंट होने पर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता था। उनको चलते देख

कर ऐसा प्रतीत होता था जैसे कृतयुग का कोई महान् तपस्वी ऋषि पृथ्वी पर उतर आया हो। उनके वार्त्तालाप से किसी ब्रह्मऋषि के सम्भाषण का भान होता था। ब्रह्म ज्ञान के अलौकिक तेज से देदीप्यमान उनका मुखमण्डल उनके सौम्य व्यक्तित्व में एक विशिष्ट आकर्षण-बिन्दु का स्थान रखता था। ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म की तो वे मानों प्रतिमूर्ति ही थे। उनके द्वारा वेद, उपनिषद्, पुराण एव अन्य गहन दार्शनिक ग्रन्थों का सूक्ष्म विवेचन एवं विश्लेषण अधिकृत एवं मान्य होते थे। उनके अपने मौलिक एवं स्वतन्त्र दार्शनिक सिद्धान्त थे और इसीलिए उनके नाम से जुड़ी 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र' की उपाधि अक्षरशः सत्य एवं सार्थक बन पाती है। वस्तुतः उनके अभाव की पूर्ति होना सम्भव नहीं।

आज कार्तिक शुक्ल नवमी के इस पावन अवसर पर उन्हीं महापुरुष की वार्षिक पुण्यतिथि पर उनको श्रद्धांजलि स्वरूप उन्हीं द्वारा समय-समय पर निर्मित परन्तु प्रायः अप्रकाशित कुछ एक स्तोत्रों को संगृहीत कर टीका सहित पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने का उपक्रम उन्हीं के द्वारा संस्थापित "विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान" ने किया है। अनन्तश्री जी के तेरह ग्रन्थ उनके जीवन काल में ही प्रकाश में आ गए थे जिनकी सूची इस पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर दी गई है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक उनका चौदहवाँ ग्रन्थ है।

इसके अतिरिक्त उनकी एक प्राप्त सूची के अनुसार अभी लगभग उनके तीस ग्रन्थ अमुद्रित हैं। उनमें से कुछ एक की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका प्रकाशन यथासमय संस्था द्वारा किया जाएगा।

हम यह अनुभव करते हैं कि अनन्तश्री जी महाराज के सभी शिष्य एवं भक्त उनके निजी जीवन के सम्बन्ध में जान-

कारी प्राप्त करने को उत्सुक हैं। इसका एक बड़ा कारण यह है कि अपने जीवन काल में अनन्तश्री जी ने इस विषय में न तो स्वयं पर्याप्त प्रकाश डाला और न ही किसी अन्य को कुछ लिखने दिया। इस सन्दर्भ में सभी का ज्ञान वहीं तक सीमित रहा जहाँ तक उन्होंने विभिन्न अवसरों पर स्वयँ वार्त्तालाप द्वारा उसका उद्घाटन किया। यहाँ तक कि प्रायः किसी को भी उनकी जन्मतिथि, स्थान, वँश, शिक्षा-दीक्षा एवं गृह त्याग आदि की अधिकृत जानकारी नहीं थी। अतः देह-त्याग के पश्चात् जब सभी लोगों को यह पता चला कि ऐसे जन्मजात वैराग्यवान महानुभाव का कभी विवाह भी हुआ था, तो उनके विस्मय का ठिकाना न रहा। इससे भी अधिक आश्चर्य उनको तब हुआ, जब यह तथ्य प्रकाश में आया कि वास्तव में उनका उक्त संस्कार नियति की विडम्बना-मात्र ही था। वस्तुतः उन्होंने गृहस्थ भोगा ही नहीं और स्त्री समागम से पहले ही जगदम्बा की आज्ञानुसार २५ वर्ष की आयु में गृह-त्याग किया। तदनन्तर लगभग ५४ वर्ष तक समूचे भारतवर्ष में घूम घूम का ज्ञानोपदेश द्वारा लोकोपकार किया। यह बात नहीं कि उन्होंने अपने और अपने वंश आदि के विषय में कुछ न लिखा हो बल्कि इस प्रकार की लिखित सामग्री तो प्रचुर मात्रा में अब प्राप्त हुई है। केवल इसका प्रकाशन नहीं हुआ, जो अब करना है। एक वर्ष का समय तो उनकी हर प्रकार की वस्तुओं को सम्भालने और क्रम से रखने में लग गया। फिर इस कार्य में किसी विशिष्ट और संस्कृतज्ञ विद्वान् व्यक्ति के सहयोग की अपेक्षा है और वह व्यक्ति इस कार्य के लिए समय भी निकाल सके। इन्हीं सब कारणों से उनका जीवन-चरित्र इस अवसर पर प्रकाशित करना सम्भव नहीं बन पाया है। पता लगा है कि जयपुर की संस्था ने इस दिशा में

कुछ कार्य किया है और २०/२५ पृष्ठों की एक लघु-पुस्तिका प्रकाशित की है परन्तु विस्तृत ग्रन्थ अभी लिखा जाना है। भविष्य में यह कार्य शीघ्र सम्पन्न होगा, ऐसा विश्वास है। फिर ७८ वर्षों के जीवन के विशद अनुभवों को यों ही कुछ एक पृष्ठों में नहीं समेटा जा सकता। उनके जीवन की कई एक उपलब्धियों पर तो अलग से एक एक पुस्तक लिखी जा सकती है।

प्रस्तुत स्तोत्र संग्रह के हिन्दी अनुवाद का कार्य अनन्त श्री जी महाराज के सुप्रसिद्ध शिष्य शिरोमणी एवं विद्वानों में श्रेष्ठ श्री डा० बलजिन्नाथ पंडित एम० ए०, पी एच० डी० ने किया है। उन्हें अनन्तश्री जी की अधिकतर पुस्तकों की व्याख्या व टीका करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अपने इस निःशुल्क परिश्रम द्वारा संस्कृत से अनभिज्ञ हिन्दी-प्रेमी पाठकों की समस्या पूर्ति का यश तो उन्होंने अपने इस कृत्य से निःसन्देह प्राप्त कर ही लिया है, इसकेसाथ ही संस्था पर भी उनका यह उपकार अविस्मरणीय है। इसके लिए उनको शत-शत धन्यवाद।

पश्चिम विहार, नई दिल्ली निवासी श्री के० के० आनन्द भी धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ के मुद्रण का सम्पूर्ण व्यय वहन किया है। अतः उन को भी मैं अपनी और संस्था की ओर से अनेकानेक धन्यवाद देता हूं।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं यह तुच्छ भेंट अनन्तश्री विभूषित सिद्ध लोक निवासी पूज्यपाद श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज के चरण कमलों में सादर समर्पित करता हूं। इति

—रत्नलाल जैन
कोषाध्यक्ष/प्रचार मन्त्री

नई दिल्ली
९.११.१९८३



अमृत स्तोत्र संग्रह

—०—

१. श्री पवननन्दनाष्टकम्

हनुमत्स्तोत्रम्

त्वमसि दीनजनावनतत्परस्
त्वमसि भीत-भयापहरः सदा।
त्वमसि पापनिवारण-दीक्षितः
पवन-नन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ १ ॥

हे वायुपुत्र श्री हनुमान् जी, आप दीन जनों की रक्षा करने में तत्पर रहते हैं; आप सदैव भयभीत प्राणियों के भय को दूर करने वाले हैं, आप पापों का निवारण करने में भली भान्ति सुशिक्षित हैं, आप निरन्तर हमारी रक्षा करते रहें।

भवभयानक-पाप-गणावृतं,
कलिकराल-कला-कलनाकुलम्।
तव पदाब्ज-युगे शरणागतं
पवननन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ २ ॥

हे वायुपुत्र श्री हनुमान् जी, मैं संसार में होने वाले भयानक पापों के समूहों से ढांपा हुआ हूं, कलियुग देवता की भयानक कलाओं की कलनाओं से घिरा होने से व्याकुल हूं, फिर भी आप के चरणों के युगल की शरण में आया हूं, इस कारण मेरी निरन्तर रक्षा कीजिए।

पतित-पावन, दुःखित-जीवन,
प्रणतपालन, पुण्यवदाश्रय।
कुमतिनाशन, दीन-दया-निधे
पवननन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ ३ ॥

हे पवननन्दन श्री हनुमान् जी, हे दुःख-पीड़ित जनों को जीवन देने वाले, हे शरणागतों की पालना करने वाले, हे पुण्यवानों को आसरा देने वाले, हे दुष्टबुद्धि वाले दुर्जनों का नाश करने वाले, हे दीनों के ऊपर की जाने वाली दया के खज़ाने, आप निरन्तर मेरी रक्षा करते रहें।

न जननी न पिता न च सोदरो
जगति कोऽपि ममास्ति न साम्प्रतम्।
मम विनाशय दुःख-कदम्बकं
पवननन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ ४ ॥

हे पवनपुत्र श्री हनुमान् जी मेरी न तो माता है और न ही पिता है और नहीं कोई सगा भाई है, अब तो संसार में मेरे दुःख समूहों को दूर हटाइए और निरन्तर मेरी रक्षा करते रहिए।

तव विहाय पदाब्जयुगं प्रभो,
शरणमन्यदहं क्व नु यामि भोः।
मयि दयां सपदि प्रविधीयतां
पवननन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ ५ ॥

हे पवनपुत्र हनुमान् जो, हे प्रभो, आप के चरणकमल के युगल को छोड़कर मैं और किस की शरण में कहां जाऊं आप ही मुझ पर जल्दी से दया कीजिए और निरन्तर मे रक्षा करते रहिए।

करुणयाशु मयि प्रविलोक्यतां
न मम पाप-गणः प्रविचार्यताम् ।
गतनयोऽपि शिशुः किमुपेक्ष्यते
पवननन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ ६ ॥

हे पवनपुत्र श्री हनुमान् जी, जल्दी ही मुझे करुणाभरी दृष्टि से ज़रा देखिए, मेरे पापों के समूहों की ओर ध्यान मत दीजिए। यदि बच्चा ठीक नीति पर नहीं चलता हो तो क्या उसकी कभी उपेक्षा की जाती है? तो आप निरन्तर मेरी रक्षा करते रहिए।

जगति ते विपुलं प्रथितं यशो
यदयमेव हि सङ्कट-मोचनः ।
सपदि मय्यपि नाम तथास्तु ते
पवननन्दन, पाहि निरन्तरम् ॥ ७ ॥

हे पवनपुत्र श्री हनुमान् जी, संसार में आपकी बहुत कीर्ति है कि यही समस्त संकटों से छुटकारा दिलाने वाले हैं। तो मेरे विषय में भी आप एकदम ही वैसे ही हो जाइए, अर्थात् मुझे भी संकटों से छुटकारा दिलाइए और मेरे लिए भी आप का वह नाम यथार्थ बने। आप निरन्तर मेरी रक्षा करते रहिए।

झटिति मे वद नाथ कदा दयां
मयि करिष्यसि दुःखित-वत्सल ।
तव पदाब्जयुगैक-समाश्रयं
पवननन्दन पाहि निरन्तरम् ॥ ८ ॥

हे दुखियों से प्यार करने वाले हमारे नाथ, मुझे जल्दी ही बताइए कि आप मुझ पर कब दया करेंगें। हे पवनपुत्र,

हनुमान् जी, मेरा एकमात्र आसरा आपके चरणकमलों का युगल ही है, अतः आप लगातार मेरी रक्षा करते रहिए।

षड्जधाम्यमिते वर्षे वैक्रमे स्वर्धुनीतटे।
शुक्रशुक्ल-चतुर्दश्यां हनूमत्स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ९ ॥

पञ्जाबसिन्धक्षेत्रान्तर्वत्ति-श्रीराममन्दिरे।
हरिद्वारे विनिरमाद् विद्वानमृतवाग्भवः ॥ १० ॥

विक्रम संवत् १९८६ में ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि शुक्रवार को हरिद्वार में पंजाब-सिन्ध-क्षेत्र के भीतर विद्यमान गंगा तट पर श्री राम मन्दिर में इस स्तोत्र का निर्माण विद्वान् अमृतवाग्भवाचार्य ने किया।

इत्याचार्य-श्रीमदमृतवाग्भव प्रणीतं श्री हनूमत्स्तोत्रं पवन-नन्दनाष्टकं नाम सम्पूर्णम्।

आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव के द्वारा निर्मित यह पवननन्दनाष्टक नाम वाला श्री हनुमान् जी का स्तोत्र पूरा हो गया।

२. श्रीपरशिवाष्टकम्

जाह्नवी-जल-तुषार-सङ्गिना
पावनेन पवनेन पावितः।
प्रापिताखिलशुभो जनावनं
भावये परशिवं शिवायुतम् ।। १ ।।

गंगा जी के जल की फुहार से मिश्रित पवित्र वायु से मैं पवित्र हो गया हूं और उससे मुझे समस्त कल्याण प्राप्त कराए गए हैं। इस प्रकार का मैं अपने भक्तों की पालना करने वाले पार्वती से युक्त परम शिव की भावना कर रहा हूं।

विशेष—भावना वास्तविक सत्य के कल्पनात्मक ज्ञान के अभ्यास को कहते हैं। जनावनम् = जनों का अवन = रक्षा करने वाला।

एकतो भासित-भासुराङ्गकं
बाल-भानु-शत-कान्तिमेकतः।
बालचन्द्र-कलिकाञ्चितालिकं
भावये परशिवं शिवायुतम् ।। २ ।।

एक (अर्थात् दाईं) ओर से भस्म की शुभ्र कान्ति से चमकते हुए शरीर वाले और एक (बाईं) ओर से सैंकड़ों उदयकालीन सूर्यों की जैसी लाल कान्ति वाले तथा नए चाँद की कला से अलङ्कृत ललाट वाले पार्वती से युक्त अर्द्धनारीश्वर भगवान् परमशिव की मैं भावना कर रहा हूं।

विशेष—दाईं ओर से शिव भस्म धवल हैं और उनके शरीर का बायां भाग पार्वती है जो अरुण वर्ण की कान्ति से देदीप्यमान है।

दुष्कृतानि निखिलानि दूरतः
साम्प्रतं परिगतानि सन्ति मे।
निर्मलीकृतवपुः स्वमानसे
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥ ३ ॥

मुझे घेर कर रखने वाले मेरे समस्त पाप अब दूर हट गए हैं। मैंने अपने स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों को निर्मल कर लिया है और अब अपने मन में पार्वती समेत परमशिव की मैं भावना कर रहा हूं।

साम्प्रतं दलित-सर्व-वासनो
बद्ध-सौख्यकर-पङ्कजासनः।
नासिकाग्रमवलोकयन्मुदा
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥ ४ ॥

अब तो मैं समस्त वासनाओं का दलन कर चुका हूं और सुख देने वाले पद्मासन को बांध कर मैं अपनी नासिका के अग्र भाग को अनायास ही देखता हुआ पराशक्ति से युक्त परमशिव की भावना कर रहा हूं।

विशेष—इस श्लोक में उस शाम्भव योग के अभ्यास की ओर संकेत है जिसकी दीक्षा उन्हें भगवान् दुर्वासा से स्तोत्र निर्माण के काल से दस वर्ष पूर्व मिली थी।

मीलिताक्षिगलदश्रुधारया
गद्गदाक्षरपदैः स्तुवन् गिरा।
भक्तपालनकरं दयानिधिं
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥ ५ ॥

बन्द की हुई आंखों से बहती हुई अश्रुधारा से और गद्गद ध्वनि से बोले जाते हुए अक्षरों और शब्दों वाली वाणी से स्तुति करता हुआ मैं भक्त की परिपालना करने वाले, दया के समुद्र, पराशक्ति से युक्त परमशिव की भावना करता हूं।

दीननाथ, भगवन्, दयानिधे
पाहि पाहि शरणागतं प्रभो।
क्षम्यतां मयि शिवेति चारटन्
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥ ६ ॥

"हे दीनों के नाथ, हे परम ऐश्वर्य वाले, हे दया के निधि, शरण में आए हुए मुझको बचाओ, बचाओ; हे शिव, मेरे ऊपर क्षमा करो" इस प्रकार से रट लगाता हुआ मैं पराशक्ति से युक्त परम शिव को भावना करता हूं।

नाथ, सम्प्रति दयार्द्र-चक्षुषा
पश्य मां झटिति दीनजीवितम्।
मन्तुमन्तमपि रक्ष आरटन्
भावये परशिवं शिवामयम् ॥ ७ ॥

"नाथ, अब तो दया से आर्द्र (गीली) दृष्टि से जल्दी मुझे देख लो, अर्थात् मेरे ऊपर दया की दृष्टि डालो, क्योंकि मेरा जीवन ही अति दीन बन गया है। यदि फिर मैं पाप युक्त भी हूं, फिर भी मेरी रक्षा कर ही लो" इस प्रकार से चिल्लाता हुआ मैं पराशक्ति से युक्त परमशिव की भावना कर रहा हूं।

शर्व सर्वजन-शर्म-कारण
प्रापय त्वमधुना निजान्तिकम्।
एवमेव सततं रटन्नहं
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥ ८ ॥

"हे दुःखों का नाश करने वाले और सभी प्राणियों का कल्याण करने वाले, अब आप मुझे अपने समीप पहुंचा दीजिए," इस प्रकार से सदा रट लगाता हुआ मैं पराशक्ति से युक्त परम शिव की भावना करता हूं।

षड्ज-धान्यमितवैक्रमेऽब्दके
शुक्रशुक्ल-दशमी-तिथौ रवौ।
स्वर्धुनीतटनिवासिना मुदा
निर्मितं परशिवाष्टकं शुभम्॥ ९॥

विक्रम संवत् १९८६ में, ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को रविवार के दिन गङ्गा जी के तट पर निवास करने वाले (आचार्य जी) ने अनायास ही हर्षपूर्वक इस कल्याण स्वरूप परमशिवाष्टक का निर्माण किया।

स्तुवन् शिवं शिवायुक्तं क्रीडन्नात्मन्यनारतम्।
विमृशन् स्वं स्वप्रकाशं विद्वानमृतवाग्भवः॥ १०॥
त्रिवेणीघट्टसोपाने उपविश्याम्बुजासने।
गङ्गातीरे हृषीकेशे निरमात् स्तोत्रमुत्तमम्॥ ११॥

पराशक्ति से युक्त शिव की स्तुति करते हुए, लगातार अपने आप से ही क्रीडा करते हुए, स्वयं अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान् अपने वास्तविक स्वरूप का विमर्श करते हुए, विद्वान् अमृतवाग्भव ने ऋषिकेश में गङ्गा के तट पर त्रिवेणी नामक घाट पर पद्मासन में बैठ कर इस उत्तम स्तोत्र का निर्माण किया।

इत्याचार्यश्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतं श्री परशिवाष्टक-स्तोत्रम्।

यह श्रीमान् आचार्य अमृतवाग्भव द्वारा निर्मित श्री परशिवाष्टक स्तोत्र है।

३. "बालकं मां पाहि"

देवी स्तोत्र

बालकं मां पाहि सद्यो निरालम्बं जगन्मातः ।
त्वमेवालम्बन मह्यमिदानीं सर्वमेकातः ॥ ध्रुवम् ॥

हे जगन्माता, अब तो मेरा सब प्रकार का आलम्बन एक मात्र तू ही है, अतः मुझ आलम्बनहीन बालक की तुरन्त रक्षा करो, अर्थात् मेरे त्रिविध दुःखों का अन्त करके मेरा वास्तविक कल्याण करो।

मानसे त्वं मन्यसे किं महापापोऽयमस्तीति ।
न माता हीनचारित्रं सुतं त्यक्तुं समर्थाऽतः ॥ १ ॥ बा०

क्या तू मन में यह विचार कर रही है कि यह व्यक्ति महा पापी है (और इसी लिए मेरी ओर ध्यान नहीं दे रही है) (तो इस पर मेरा तर्क यह है कि) अपने चरित्रहीन पुत्र को माता कभी छोड़ नहीं सकती इसलिए – हे जगन्माता०

न माता नैव मे भ्राता स्वसा नैवास्ति मे तातः ।
सुहृद्वा त्वां विहायैकां हितैषी कोऽपि हे मातः ॥ २ ॥ बा०

हे माता, अकेली तुझ को छोड़कर कोई मेरी मां नहीं, भाई नहीं, बहन नहीं, पिता नहीं, मित्र नहीं और न ही कोई मेरा हित चाहने वाला है।

विलम्बं हेतुतः कस्मात् करोषि त्वं मुधा मातः ।
उपेक्षातो मदीयाया अधोऽधो जायते पातः ॥ ३ ॥ बा०

हे मां, तू किस कारण से व्यर्थ ही देर लगा रही है ? तुम्हारी इस उपेक्षा के कारण मेरा लगातार ही अध:पतन हो रहा है ।

एकतानोऽपेक्षतेऽयं वारिवाहं यथा चातः ।
त्वामतो दीनबन्धो मां पाहि शरणागतं मातः ॥ ४ ॥ बा०

जिस तरह से चातक एकतान होकर बादल को चाहता है वैसे ही हे मां, मैं तुम्हें चाहता हूं । अतः हे दीनों की बान्धव बनने वाली मां, मुझ शरणागत की रक्षा करो ।

मयि त्वं साम्प्रतं स्तुत्या यदि प्रीतासि हे मातः ।
कृतार्थोऽनेन तर्हि स्यां त्वदीयः काशिको जातः ॥ ५ ॥ बा०

हे मां, यदि तू अब इस स्तुति से मेरे ऊपर प्रसन्न हो गई है तो तब मैं कृतकृत्य हो जाऊं । मैं तो तुम्हारा ही काशीवाला पुत्र हूं ।

चिदाधिपमिते वर्षे काश्मीरे कार्त्तिके सिते ।
साधुगङ्गास्थले विप्रः काशिको निरमाद् वसन् ॥

विक्रम संवत् १९८६ में कश्मीर देश में साधुगङ्गा नामक तीर्थं पर निवास करते हुए काशी निवासी ब्राह्मण ने इस स्तुति का निर्माण किया ।

विशेष—कश्मीर में सोपोर कस्बे के उत्तर में "साधु माल्युन" नामक गांव में एक साधुगंगा नाम वाला प्राचीन पुण्यतीर्थ है। जब आचार्य महोदय कश्मीर यात्रा के बीच वहां ठहरे थे तब उन्होंने वहीं इस स्तुति का निर्माण किया ।

इत्याचार्यामृतवाग्भवप्रणीतं गीतम् ।

आचार्य अमृतवाग्भव के द्वारा इस गीत की रचना की गई ।

४. महागुरु—श्रीकृष्ण स्तोत्रम्

विशेष—आचार्य महोदय को जब कभी किसी भी विद्या के अभ्यास में कोई भी कठिनाई उपस्थित होती थी तो वे भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते थे। श्रीकृष्ण स्वप्न दर्शन आदि के द्वारा उस कठिनाई को दूर करने का उपाय बता देते थे जिससे वे बाधा के बिना ही उसे सुलझाकर विद्या के अभ्यास में आगे बढ़ते थे। किसी शास्त्र के किसी सिद्धान्त के विषय में यदि उन्हें कभी कोई शंका होती थी तो उसे भी भगवान् कृष्ण उसी तरह से दूर करते थे। अतः आचार्य महोदय श्रीकृष्ण को गुरुराज मानते रहे।

आचार्य महोदय के अपने पिता का नाम भी श्रीकृष्ण था। उनसे उन्होंने सावित्र मन्त्र की और श्रीविद्या के मन्त्र की दीक्षा प्राप्त की थी। उन दोनों के अभ्यास से उन्हें सभी विद्याओं में साफल्य की प्राप्ति में काफी सहारा मिलता रहा। अतः अपने पिता को भी वे गुरु मानते रहे। फिर धर्मशास्त्र के अनुसार पिता भी गुरु होता ही है। आचार्य महोदय की माता का नाम राधादेवी था और सौतेली माता का रुक्मिणी। घर में पिता के द्वारा रखा हुआ इनका नाम वैद्यनाथ था और वरकल (वड़कले) इनके वंश की अल्ल थी। फिर इनके पितामह का नाम भी वैद्यनाथ ही था। इनके पिता जी का व्यावसायिक सम्बन्ध वाणी विलास प्रेस के साथ भी रहा और उनके घने सम्पर्क कई एक महानुभावों के साथ रहे।

इस प्रकृत स्तोत्र में अनेकों स्थानों पर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनके दो दो अर्थ हैं। एक अर्थ भगवान् श्रीकृष्ण के साथ लगता है और दूसरा अर्थ आचार्य महोदय के पिता श्रीकृष्ण शास्त्री वरकले से लगता है। कई एक शब्दों का अर्थ भगवान् कृष्ण के निकट सम्बन्धियों के साथ लगता है और दूसरा अर्थ श्रीकृष्ण शास्त्री के संपर्क

में आए व्यक्तियों तथा उनके निकटस्थ सम्बन्धियों से। कई एक श्लोकों के दूसरे अर्थ लगभग स्पष्ट ही हैं, परन्तु कई एक के पूरे स्पष्ट नहीं है। आचार्य महोदय के पूरे इतिहास पर शोध कार्य किया जाए, उनके वंशवर्णन काव्य का पूरा अध्ययन किया जाए और वाराणसी जाकर पता लगाया जाए तो तभी सारे दो दो अर्थों वाले शब्दों के दूसरे दूसरे अर्थ का स्पष्टीकरण हो सकता है। इस समय अनुवाद लेखक को जितना भी विदित है उतने अंश में स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

वैरस्यमस्ति विषयेषु समस्तमेव
हृद्यं न किञ्चिदपि भाति जगच्छरण्य।
नामैव तेऽलमघनिर्हरणाय शोक-
पाथोधिशोषणनुतिं कुरुतेऽबलस्ते ॥ १ ॥

हे सारे जगत को शरण देने वाले, मुझे भोग्य विषयों के प्रति परिपूर्ण विरक्ति है, ये विषय पूरी तरह से रसहीन हैं, कोई भी विषय मेरे लिए हृदय को अच्छा लगने वाला नहीं है। बस आप का नाम ही पापों का नाश करने के लिए पर्याप्त है। तो यह बलहीन व्यक्ति आपको ही प्रणाम कर रहा है, क्योंकि आपके प्रति जो प्रणाम है वह शोकों के समुद्रों को सुखा देने वाला है।

श्रीमन्मयूरसुमनोरमपक्षभूषं
श्रीराधिका-हृदय-कुञ्जविराजमानम्।
वंशीं करे वरकलाश्रयिणीं वहन्तं
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ २ ॥

शोभायमान मोर के अतीव मनोहर पंख जिनके शिरोभूषण हैं, जो श्रीराधा जी के हृदय रूपी निकुञ्ज में (सदा) विराजमान बने रहते हैं, उत्तम संगीत कला को आश्रय देने वाली बांसुरी को जो हाथ में धारण करते हैं, उन गुरुराज श्रीकृष्ण को ही मैं प्रणाम कर रहा हूं।

आचार्य महोदय के पिता जी भी अपनी प्रथम-पत्नी श्री राधा जी के हृदय में विराजमान रहते रहे। उनके वंश का उपनाम "वरकल" था। वे भो आचार्य महोदय के गुरुराज थे। श्रो मयूरेश्वर उनके बड़े भाई थे। उनके बाल्यकाल में उनके काकपक्षों को भूषा श्रो मयूरेश्वर के मन को खींचती रही। फिर जीवन भर उनके पक्ष को ही वे विभूषित करते रहे। वंश शब्द भी स्त्रोलिंग विवक्षा से वंशी बन सकता है। तो वे वरकल वंश की बागडोर अपने हाथ में लिए हुए थे।

श्री राधिका-मुख-महोदधि-पूर्णचन्द्रं
श्रीरुक्मिणी-नयन-नीरज-चित्रभानुम्।
संसार-रोग-हरणोद्यत-वैद्यनाथा-
त्मानं महागुरुमहं प्रणमामि नित्यम्॥ ३॥

जो श्रीराधा जी के मुख रूपी विशाल समुद्र को उल्लास में लाने के लिए पूर्ण चन्द्रमा हैं, जो श्रीरुक्मिणी जी के नेत्र रूपी कमलों को विकास में लाने के लिए सूर्य हैं तथा संसार रूपी रोग को हटा दने के लिए उद्यत उत्तम से भी उत्तम वैद्य स्वरूप हैं उन श्रीकृष्ण रूपी महागुरु को मैं प्रणाम कर रहा हूं।

श्रीकृष्ण शास्त्री का भी वैसा ही सम्बन्ध पहले श्रीराधा देवी के साथ और पश्चात् श्री रुक्मिणी के साथ रहा। आचार्य महोदय वैद्यनाथ नाम वाले थे और संसार रूपी रोग से मुक्त होने को तैयार थे। उनके पिताजी श्रीकृष्ण शास्त्री ही आचार्य महोदय के रूप में स्थित थे क्योंकि 'आत्मा वै जायते पुत्रः'। फिर श्रीकृष्ण शास्त्री के पिता जी का भी नाम वैद्यनाथ ही था। अतः वे वैद्यनाथ श्रीकृष्ण शास्त्री के शरीर के रूप में उपरोक्त न्याय से अवस्थित होकर स्थित रहे। इस प्रकार

से यह स्तुति श्रीकृष्ण शास्त्री के प्रति भी एक साथ ही की जा रही है।

यत्पादपङ्कज-युग-स्मरणेन पुंसां
पापानि यान्ति सकलानि विनाशमाशु।
तं सर्वदा विमल-मानस-राजहंसं
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ ४ ॥

जिनके चरण कमलों के युगल का स्मरण करने से लोगों के सारे पाप जल्दी नष्ट हो जाते हैं, उन निर्मल हृदय रूपी मानस सरोवर में विहार करने वाले राजहंस रूपी गुरुराज श्रीकृष्ण भगवान् को और अपने पिता श्रीकृष्ण शास्त्री को ही मैं प्रणाम कर रहा हूं। इस श्लोक का एक ही अर्थ भगवान् श्रीकृष्ण के साथ और श्रीकृष्ण शास्त्री के साथ लगता है।

श्रीमन्महेन्द्र-नुत-पाद-सरोज-युग्मं
श्रीदेवकी-महित-नन्दन-दत्तमानम्।
श्रीराम-वत्सलमहर्निशमेव चित्ते
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ ५ ॥

ऐश्वर्य से विभूषित देवराज इन्द्र ने जिनके चरण-कमलों की वन्दना की, श्री देवकी के द्वारा पूजित श्री नन्दगोप ने जिनका बड़ा सम्मान किया, श्री बलराम ने जिन्हें बहुत प्यार दिया, उन श्रीकृष्ण रूपी गुरुराज को ही मैं दिन रात हृदय में प्रणाम कर रहा हूँ।

श्री महेन्द्र जिनके चरण कमलों के युगल को प्रणाम करते रहे, आचार्य देवकीनन्दन ने जिन्हें बड़ा सम्मान दिया और श्री रामचन्द्र से जिन्हें बहुत प्यार था, ऐसे गुरुराज श्रीकृष्ण शास्त्री को मैं दिन रात हृदय से प्रणाम कर रहा हूँ।

विशेष—श्री बल्लभाचार्यपीठ के पीठेश्वर श्री देवकीनन्दन जी ने उन्हें अपने पीठ में मुख्य पण्डित के रूप में नियुक्त कर रखा था। रामचन्द्र उनका दूसरा पुत्र था। श्री महेन्द्र सम्भवतः उनके कोई शिष्य थे।

आदौ ददौ जननमुत्तम-वंश-मध्ये
सावित्रिकां तदनु चित्कलया ददौ यः।
तं ब्रह्मवित्-पुरुष-सम्भव मूलहेतुं
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ ६ ॥

जिस भगवान् कृष्ण ने ही मुझे पहले तो उत्तम वंश में जन्म दिया, फिर अपनी परमेश्वरी चिद्रूपा कला के विलास से मुझे विधिवत् मौञ्जीबन्धन संस्कार के द्वारा गायत्री मन्त्र की दीक्षा दिला दी और साथ ही श्रीविद्या-रूपिणी चित् कला भी दिला दी (चित्कलया सह सावित्रिकां ददौ), मुझ जैसे ब्रह्मज्ञानी पुरुष की उत्पत्ति के मूल कारण के रूप में ठहरे हुए उन गुरुराज श्रीकृष्ण को ही मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

साथ ही मैं अपने पिता रूपी गुरुराज श्रीकृष्ण शास्त्री को प्रणाम कर रहा हूँ। उन्हींने पहले तो मुझे अपने उत्तम वरकल वंश में जन्म दिया, तदनन्तर गायत्री की भी दीक्षा दी और बाला त्रिपुरा विद्यारूपिणी चित्कला की भी। मेरे ब्रह्मवित् बनने के मूल कारण वे ही हैं क्योंकि उन्हीं के द्वारा डाले गए शुभ संस्कारों से मैं ब्रह्मज्ञानी बन गया।

वाणी-विलास-महिता तु यदीय-वंशी
राका-शशाङ्क-धवलां हरते सुकीर्तिम्।
पौराणिकैः सततमेव सुगीत-वंशीं
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ ७ ॥

जिस भगवान् कृष्ण की बांसुरी में वाणी का विलास भरा है जिस कारण से वह पूजित होती रही और अब भी पूर्णिमा के चान्द के समान शुभ्र कीर्ति को प्राप्त कर रही है तथा जिस की वंशी के गीतों को पुराणकारों ने खूब गाया उस गुरुराज श्रीकृष्ण भगवान् को ही मैं नमस्कार करता हूँ ।

इस पद्य के द्वारा आचार्य महोदय अपने पिता श्रीकृष्ण शास्त्री को भी प्रणाम कर रहे हैं । उनका तथा वरकल वंश का ही सम्पर्क सम्भवतः वाणी विलास प्रेस के साथ रहा हो और उससे उनका वंश ही यशस्वी बना हो । वाराणसी के सभी पुराण-शास्त्रज्ञ विद्वान् उनका तथा उनके वंश का बहुत सम्मान करते थे क्योंकि वे उस शास्त्र के वहाँ अनुपम विशेषज्ञ थे । इस श्लोक के इस अर्थ के विषय में भी वाराणसी जाकर कुछ शोध कार्य करने की आवश्यकता है । 'मानस' शब्द स्त्री-लिङ्ग विवक्षा से 'मानसी' हो सकता है ।

गङ्गाधराद्य-गुरु-पाद-सरोज-पूजा-
सम्प्राप्त-साङ्ग-सरहस्यक-राज-विद्यम् ।
आनन्दनाथममरावलि-पूज्यमानं
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ ८ ॥

जिन्हें समस्त रहस्यों के समेत साङ्गोपाङ्ग राजविद्या (श्री विद्या) भगवान् शिव रूपी आदिगुरु के चरणों की पूजा करने से प्राप्त हुई, देवताओं की श्रेणियों द्वारा पूजित होते हुए उन आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण को ही मैं प्रणाम कर रहा हूं। वे ही मेरे गुरुराज हैं ।

मैं अपने पिता श्रीकृष्ण शास्त्री रूपी गुरुराज को ही प्रणाम कर रहा हूं । उन्होंने समस्त रहस्यों के समेत साङ्गोपाङ्ग

श्रीविद्या को भट्ट गङ्गाधर रूपी अपने सर्वप्रथम गुरु के चरणों की पूजा के द्वारा प्राप्त किया था । उनका दीक्षा नाम आनन्द नाथ था । सभी भूदेवों की श्रेणियां उनका सम्मान करती थीं ।

विशेष—यह गङ्गाधर श्रीकृष्ण शास्त्री के बड़े ताया थे जिन्होंने उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा भी स्वयं दी थी और रहस्य विद्याओं की पूरी दीक्षा देकर पूर्णाभिषेक भी किया था । भगवान् कृष्ण के उपास्य देव भी गङ्गाधर शिव ही थे ।

यद्दर्शिताध्व-पथिकेन मया समस्तं
ब्रह्मामृताब्धि-परिपूरित-सर्व-भावम् ।
दृष्टं जगत् करतलाऽऽमलकेन तुल्यं
श्रीकृष्णमेव गुरुराजमहं नमामि ॥ ६ ॥

जिनके द्वारा (समय समय पर) दिखाए हुए मार्ग पर चलते हुए मैंने इस सारे जगत् को हथेली पर रखे हुए आंवले के एक फल की तरह पूरी तरह से देख लिया कि इसके सारे के सारे पदार्थ परब्रह्म रूपी अमृत के समुद्र से भरे हुए हैं, उन श्रीकृष्ण भगवान् रूपी गुरुराज को ही मैं प्रणाम कर रहा हूं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ही स्वप्नदर्शन आदि के द्वारा आचार्य महोदय की समस्त शङ्काओं को दूर करते हुए उनके आध्यात्मिक साधना मार्ग को प्रशस्त बनाते रहे ।

विशेष—इधर से श्री आचार्य महोदय की इस प्रकार की ज्ञान दृष्टि जो खुल गई उसका प्रथम कारण उनके पिता श्रीकृष्ण शास्त्री के द्वारा दी गई श्रीविद्या की दीक्षा ही थी । अतः यह स्तुति साथ ही श्रीकृष्ण शास्त्री के प्रति भी की गई है । ज्ञान दृष्टि के खुल जाने पर सब कुछ पर-ब्रह्म ही दीखता है, जैसे समुद्र तंरग, बुद्बुद, वेला आदि के रूप में दीखता है ।

श्रीराधिका-महित-कृष्ण-महागुरुत्था-
ऽहंभावपूरिततनुः प्रभुर्वैद्यनाथः ।
एकः स्फुरद्वरकलो हृदयोल्लसन्तीम्
उल्लासयन् विजयते स्वविसर्गशक्तिम् ॥ १० ॥

श्री राधा जी के द्वारा पूजित श्रीकृष्ण भगवान् रूपी महागुरु की कृपा से उद्गत परिपूर्ण अहम्भाव से परिपूरित शरीर वाला, अपनी उत्तम कला को गतिशील बनाता हुआ एक प्रभु वरकल वैद्यनाथ हो अपने हृदय में उल्लास को प्राप्त होने वाली पारमेश्वरी विसर्ग शक्ति को उल्लास में लाता हुआ सर्वोत्कृष्ट है, अत: उसी की जयकार हो ।

इस श्लोक द्वारा आचार्य महोदय स्वात्म-परमेश्वर की जयकार कर रहे हैं। ऐसे ऐसे सुन्दर स्तोत्रों के निर्माण कार्य में उनकी उत्तम काव्यकला ही गतिशील हो रही है। ऐसी काव्यसृष्टि-का निर्माण भी मूलत: पारमेश्वरी सृष्टि शक्ति का ही एक उदाहरण है । अत: इसे विसर्ग शक्ति का उल्लास कहा गया। ज्ञानी समस्त विश्व को अपने आप ही के रूप में देखता है। यही परिपूर्ण अहंभाव होता है।

विशेष—श्रीकृष्ण शास्त्री भी श्री राधादेवी से पूजा प्राप्त करते रहे। वे भी आचार्य महोदय के महागुरु थे। जिस शरीर में उनका अहम्भाव भरा रहा उस शरीर की उत्पत्ति श्रीकृष्ण शास्त्री से हुई थी। तो इस पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ही साथ श्रीकृष्ण शास्त्री का भी स्मरण सम्मान पूर्वक किया गया है।

आधारादि-सहस्र-पत्र-कमलं यावच्चमत्कारकृत्-
तेजो नील-पयोद-कोमल-रुचि श्रीराधिकाराधितम् ।
योगाभ्यास-परायणैरपि महाकष्टेन यत् प्राप्यते
तद्वन्दे यदनुग्रहेण ससुखं प्राप्तं गुरोः पद्युगम् ॥ ११ ॥

जो तेज मूलाधार चक्र से लेकर के सहस्रदल कमल तक (विविध) चमत्कारों को उद्बुद्ध करता है, जिसकी कान्ति सांवले रंग के मेघ की कान्ति के समान कोमल है, जिस तेज की आराधना श्रीराधा जी ने की है, जिसे योगाभ्यास में लगे हुए साधक बड़े कष्ट से प्राप्त करते हैं और जिसके अनुग्रह से मैं ने अनायास ही सद्गुरु के चरणयुगल को प्राप्त किया उसी तेज को मैं प्रणाम कर रहा हूं।

वह तेज एक ओर श्रीकृष्ण भगवान् हैं, क्योंकि वे ही चित्कला के रूप में कुण्डलिनी के सभी चक्रों में विविध चमत्कार का उदय कराते हैं, क्योंकि मूलतः सभी प्राणियों का चित्प्रकाश वे ही हैं। श्याम मेघ की कान्ति तो उनके शरीर में प्रसिद्ध ही है। योगी जन बड़े कष्ट से उन्हें ही प्राप्त करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हीं के अनुग्रह से आचार्य महोदय को श्री दुर्वासा मुनीश्वर जैसे उत्तम गुरु की कृपा प्राप्त हुई। कुण्डलिनी देवी का वर्ण भी सांवला होता है।

विशेष—श्रीकृष्ण शास्त्री भी योगाभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी के सभी चक्रों में विशेष विशेष चमत्कारों को जगाते रहे। उनके शरीर की कान्ति भी हल्के सांवले वर्ण की थी। श्री राधा देवी उनकी पत्नी थी। योगाभ्यासी साधकों को भी बड़ी कष्टमयी तपस्या से ही इस प्रकार के पिता से जन्म मिलता है। उनके द्वारा दी गयी श्री-विद्या का अभ्यास भी आचार्य महोदय के लिए सद्गुरु की अनायास प्राप्ति का एक कारण बना होगा। इस तरह से इस पद्य के द्वारा भी एक ओर से भगवान् श्रीकृष्ण को और साथ ही दूसरी ओर से अपने पिता श्रीकृष्ण शांस्त्री को प्रणाम किया गया है।

इत्थं श्रीगुरुराजपादयुगलं श्लेषेण कृष्णाह्वयं
ध्यातं ब्रह्म हृदम्बुजे वसतु मे राधा-हृदालिङ्गितम् ।
नित्योन्निद्र-विमर्शना-परवशः स्वात्म-प्रकाशः सदा
किञ्च प्रार्थनयाऽनया सरलया प्रीणातु राधाधवः ॥ १२ ॥

श्री गुरुराज के जिस चरण युगल का ध्यान मैंने इस (पूर्वोक्त) प्रकार से श्लेषमयी रचना के द्वारा, श्रीकृष्ण नाम से किया तथा जो राधा के हृदय के द्वारा सदा आलिंगित होता रहता है वही परब्रह्म स्वरूप (चरण युगल) मेरे हृदय कमल में सदा ठहरा रहे और साथ ही वहाँ सदैव विकास को प्राप्त होते हुए स्वात्मविमर्शन में लगा हुआ स्वात्मप्रकाश भी मेरे हृदय कमल में चमकता रहे तथा श्री राधापति श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीकृष्ण शास्त्री मेरी इस सरल प्रार्थना से प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाएं।

विशेष—प्रकाश ब्रह्म की अनपेक्ष सत्ता है और विमर्श उसकी परमेश्वरता का चमत्कार है। स्फुट विमर्श से हीन प्रकाश तो सुषुप्ति जैसी शून्यता में प्रकट होने वाला प्रकाश होता है। तुर्या के स्वात्म प्रकाश के साथ ही साथ अपनी परमेश्वरता का चमत्कार भी होता रहता है, वही उसकी आनन्द-घनता है। उसी की सतत गति से उन्मनता के लिए आचार्य महोदय प्रार्थना कर रहे हैं।

श्रीमद्विक्रमभूपतेरथ गते सिंहाधिपे वत्सरे।
पञ्चम्यां भृगुवासरे सितदले चैत्रे कुलोल्लासिना।
काश्मीरान्तरनन्तनागसविधे कार्कोट-नागस्थले
विप्रेण ग्रथितां पठन् स्तुतिमिमां पुष्णात्वभीष्टं जनः ॥१३॥

विक्रम सम्वत् १९८७ में, चैत्र के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को शुक्रवार के दिन अपने कुल को उल्लास में लाने वाले

विद्यावान् ब्राह्मण ने कश्मीर देश में अनन्तनाग के समीप स्थित काकोटंनाग नामक स्थान पर स्तोत्र की रचना की । जो भी चाहे वह इस स्तुति का पाठ करता हुआ ,अपना अभीष्ट सिद्ध करे ।

इत्याचार्य-श्रीमद्‌-अमृतवाग्भव-प्रणीतं महागुरु-श्रीकृष्ण स्तोत्रं सम्पूर्णम्

इस प्रकार से श्रीमान् अमृतवाग्भवाचार्य के द्वारा निर्मित यह महागुरु श्रीकृष्ण का स्तोत्र पूरा हो गया ।

—०—

५. श्री-बालकृष्ण-दशकम्

अधिकदम्ब-कदम्बक-सङ्कुलं
बहु-विहङ्गम-सङ्ग-मनोहरे।
तरणिजा-तट-मञ्जुल-कानने।
मम विराजति मानसदैवतम् ॥ १ ॥

बहुत से पक्षियों के संगम से मनोहर बने हुए यमुना नदी के तट वाले सुन्दर वन में बहुतेरे कदम्ब वृक्षों के समूहों के झुरमुट के भीतर मेरे हृदय के देवता भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं।

नव-पयोधर-मण्डल-मञ्जुलं
कनक-मञ्जुल-पीत-पटोज्ज्वलम्।
चतुर-वल्लव-यौवत-बल्लभं
मम विराजति मानस-दैवतम् ॥ २ ॥

नए बादलों के मण्डल के समान मनोहर (श्यामवर्ण वाले), सोने के समान सुन्दर पीले वस्त्र से देदीप्यमान और ग्वालों की चतुर युवतियों के समूह के प्रियतम मेरे हृदय के देवता श्रीबाल कृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

अधि-पयो-दधि-मन्थन-मन्दिरं
सुनवनीत-लसन्मुख-चन्द्रिरम्।
कुटिल-कुन्तल-पाशक-सुन्दरं
मम विराजति मानस-दैवतम् ॥ ३ ॥

दूध दही का मन्थन करने के भवन के भीतर माखन के खूब लेप से शोभायमान मुख से (देखने वालों को) आह्लाद देने वाले और घुंघराले केशपाशों से सुन्दर बने हुए मेरे हृदय के देवता श्री गोपालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

नव-शिखावल-बर्हं-विभूषितं
नव-सरोरुह-पल्लव-लोचनम्।
हरिण-नाभि-मदाङ्कित-भालकं
मम विराजति मानस-दैवतम्॥ ४॥

मयूर के नए पंखों के शेखर से विभूषित, ताजा कमल-पत्र जैसे नेत्रों वाले और कस्तूरी के तिलक से चिह्नित माथे वाले मेरे हृदय के देवता श्री बाल गोपालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

अधिशिरोऽधि-समुज्ज्वल-कौस्तुभा-
भरण-चारु-मयूख-विभिन्नया।
विधृतयोज्ज्वलया वनमालया
मम विराजति मानस-दैवतम्॥ ५॥

सिर के ऊपर पहने हुए, बहुत अधिक चमकीले कौस्तुभ-मणि रूप अलंकार की सुन्दर किरणें जिसमें बीच बीच में प्रविष्ट हुई हैं, इस प्रकार की तथा खूब चमकीली बनी हुई, (गले में) पहनी हुई वनमाला से मेरे हृदय देवता श्री बालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

दलित-शीतकरोज्ज्वल-कान्तिमन्
मणिगणाञ्चित-हेम-किरीटकम्।
रुचिर-कङ्कण-शोभि-कर-द्वयं
मम विराजति मानस-दैवतम्॥ ६॥

चन्द्रमा को भी जिसने परास्त किया है, ऐसी खूब चमकीली कान्ति वाले रत्नों की एक श्रेणी से जिनका सोने का मुकुट

अलंकृत हुआ है तथा जिनके दोनों हाथ अतीव सुन्दर कंकणों (कड़ों) से सुशोभित हो रहे हैं, ऐसे मेरे हृदय के देवता श्री बाल गोपालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

सुमुरली-रणना-तरली-कृत-
व्रज-वधूजन-मानस-मण्डलम्।
मणि-गणाञ्चित-काञ्चन-कुण्डलं
मम विराजति मानस-दैवतम् ॥ ७ ॥

मनोहर मुरली की गूँज से जिन्होंने व्रज गोकुल की युवती कुलस्त्रियों के हृदय मण्डलों में उथल पुथल मचा दी है तथा जिनके कानों के कुण्डल रत्नों की श्रेणियों से अलंकृत हैं, ऐसे मेरे हृदय देवता बाल गोपालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

निज-मित-स्मित-मञ्जुल-माधुरी-
विदलितामृत-शीकर-वर्षणम्।
मुनि-मनो-नयन-श्रुति-हर्षणं
मम विराजति मानस-दैवतम् ॥ ८ ॥

अपनी मन्द-मन्द मुस्कराहट की सुमनोहर मधुरिमा के द्वारा जिन्होंने अमृत के छींटों की वृष्टि को भी मात कर दिया है और जो मुनियों के भी मन को, नेत्रों को और कानों को आह्लादित करने वाले हैं, ऐसे मेरे हृदय के देवता बाल गोपाल कृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

निज-मनोहर-भाषण-चातुरी-
परवशीकृत-नन्द-हृदम्बुजम्।
निज-नमज्जन-कामित-पूरणं
मम विराजति मानस-दैवतम् ॥ ९ ॥

बातें करने में अपनी मनोहर चतुराई के द्वारा जिन्होंने नंद बाबा के हृदय रूपी कमल को परवश कर दिया है तथा जो अपने को नमस्कार करने वाले भक्त जनों की कामनाओं को पूरा करने वाले हैं, वे मेरे हृदय के देवता बाल गोपालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

विकलया वृषभानुजया सह
व्रज-निकुञ्ज-विलास-परायणम्।
सुतृण-चारण-पोषितगोकुलं
मम विराजति मानस-दैवतम् ॥ १० ॥

विरह से व्याकुल बनी हुई वृषभानु की कन्या (राधिका) के साथ व्रज के कुञ्जों के भीतर प्रेमकला के विलास में लगे रहते हुए और हरी हरी कोमल घास के चराने से गायों के समूहों को खूब पुष्ट बनाने वाले मेरे हृदय के देवता बाल गोपालकृष्ण खूब शोभा पा रहे हैं।

श्रीमद्विक्रम-भूपतेरथ गते सिंहाधिपे वत्सरे
द्वादश्यां रवि-वासरे सित-दले चैत्रे कुलोल्लासिना।
काश्मीरान्तरनन्तनाग-सविधे ग्रामे वराहाभिधे
विप्रेण ग्रथितां पठन् स्तुतिमिमां पुष्णात्वभीष्टं जनः ॥११॥

श्री विक्रम संवत् १९८७ में, चैत्र के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को, रविवार के दिन, अपने वंश को उल्लास में लाने वाले तथा कुण्डलिनी के सभी चक्रों की श्रेणी को उल्लास में लाने वाले, शास्त्रज्ञ ब्राह्मण के द्वारा कश्मीर देश में अनन्त नाग के समीप वराह (व्राह) नामक ग्राम में बनाई हुई इस स्तुति का पाठ करते हुए भक्त जन इससे अपने अभीष्ट प्रयोजनों को पुष्ट करते रहें।

अमृतवाग्भव-सूरि-विनिर्मिता
द्रुतविलम्बित-वृत्त-मनोहरा।
पृथुक-कृष्ण-नुतिः पठतां नरणां
प्रियमियं परिपूरयतां द्रुतम् ॥ १२ ॥

अमृतवाग्भव नामक विद्वान् के द्वारा 'द्रुतविलम्बित' नामक छन्द में रची हुई, बालक श्रीकृष्ण की यह मनोहर स्तुति इसका पाठ करने वाले भक्तजनों के अभीष्ट फल को अतिशीघ्र पूरा करती रहे।

आचार्यामृतवाग्भव-विप्र-ग्रथितं शुभप्रदं स्तोत्रम्।
श्रीबालकृष्णदशकाभिधं पठन्नेतु लोकः शम् ॥ १३ ॥

आचार्यामृतवाग्भव नामक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण के द्वारा रची गई इस "श्री बालकृष्ण-दशक" नामक शुभप्रद स्तुति का पाठ करते हुए लोग कल्याण को प्राप्त करते रहें।

कृतिरियमाचार्यामृतवाग्भवस्य।
यह (स्तोत्र) आचार्य अमृतवाग्भव की रचना है।

—०—

६. श्रीरामाश्वधाटी चतुष्टयम्

(समस्या पूर्त्यात्मकम्)

वीराधिपं निज-पदाराधना-
रत-जनाराधनासु निरतं
धीराकृतिं परमुदाराशयं
सुरजनाराधिताङ्घ्रियुगलम् ।
सीराङ्गजा-पतिमुमाराधनीय-
हृदि सारायमाणमिह तं
श्रीरामचन्द्रमहमाराधये
मनसि धाराधराभवपुषम् ॥ १ ॥

वीरों के अधिपति, अपने चरणों की आराधना में लगे हुए भक्तजनों को सन्तुष्ट करने में संलग्न रहने वाले, धीर आकृति वाले अतीव उदार विचारों वाले, देवगणों से पूजित चरणयुगल वाले, भगवती उमा के पति के हृदय में साररूपता को प्राप्त होते हुए, हल की नोक से जन्मी हुई सीता जी के पति, बादल के समान सांवले शरीर वाले उस श्री रामचन्द्र की आराधना यहाँ अपने मन में मैं कर रहा हूं ।

विशेष—काशीपति विश्वनाथ शिव अपने हृदय में सदा श्री राम का ध्यान करते रहते हैं, ऐसी परम्परा प्रचलित है । इसी लिए शिव के हृदय में साररूपता को प्राप्त करने की बात स्तोत्र में कही गई है ।

कीरायितापि भव-वारांनिधे-
भंवति पारायणाय ननु सा
गी राम राम इति मारारि-
शासनमुदाराश्रयं बहुमतम् ।
धीराः समेति यदपाराश्रयेण
सुजनाराममादरयुतं
श्रीरामचन्द्रमहमाराधये
मनसि धाराधराभवपुषम् ॥ २ ॥

तोतों की तरह रटी जाती हुई भी तो वह 'राम राम' इस प्रकार की वाणी भवसागर से पार ले जा सकती है—ऐसा कामदेव के शत्रु शिव का वह आदेश है जिसे बहुतों ने माना है तथा जिसका बहुत मान किया जाता है। तथा जिस आदेश का आश्रय बहुत उदार है और जिसका अपार आश्रय लेने से बुद्धि और लक्ष्मी आ जाती हैं। मैं सज्जनों को आराम देने वाले और उनका आदर करने वाले तथा बादलों की जैसी कान्ति से युक्त शरीर वाले श्री रामचन्द्र की आराधना अपने मन में कर रहा हूं।

विशेष—काशीपति शिव का आदेश है कि वाराणसी में राम नाम का जप करने वाला भी मुक्त हो ही जाता है। उनके इस आदेश का आश्रय उनकी उदार दृष्टि है। असंख्य लोग सैंकड़ों वर्षों से इस आदेश को आदर पूर्वक मानते रहे हैं। धीः=बुद्धिः, राः=लक्ष्मी, (रोरि लोपः)।

भीराशि-नाश-करमारात्-करं
विपदपारार्णवस्य महतः
ह्रीराहता किल यदाराधने
तु भव-कारालयं वितनुते।

श्रीरायता भवति नाऽऽ-
राधयेऽद्य इह नारायणं तमतुलं
श्रीरामचन्द्रमहमाराधये
मनसि धाराधराभवपुषम् ॥ ३ ॥

भय के समूहों का नाश करने वाले, विपत्तियों के बहुत बड़े अपार समुद्र को दूर करने वाले, उस अतुल महिमा वाले भगवान् नारायण की आराधना नेतृत्व सामर्थ्य वाला मैं आज कर रहा हूं जिसकी आराधना के विषय में अपनाई गई लज्जा संसार रूपी कारागार की वृद्धि करती है। फिर मैं बादलों के समान श्याम शरीर वाले श्रीरामचन्द्र की आराधना अपने मन में कर रहा हूं।

विशेष—आरात=दूर। श्री राम की आराधना में लज्जा नहीं की जानी चाहिए। उससे आराधना करने की प्रवृत्ति मन्द पड़ेगी और उससे संसार रूपी कारागार में रहने की अवधि बढ़ जाएगी। 'नृ' शब्द से 'ना' बनता है और उसका व्यंग्य अर्थ होता है समाज का अग्रणी। [अद्य (अहं) ना नारायणमाराधये]। वह नारायण ही रामचन्द्र है जिसकी आराधना की जा रही है।

श्रीरालयं विशति कारालयं
विपदपारापि याति सुभगा
स्त्री राधनी रतिप-माराविता
जघन-भारानताऽनुभजते।
धीराद्दतस्य ननु नारायणस्य
दयया राघवस्य तमिह
श्रीराम-चन्द्रमहमाराधये
मनसि धाराधराभवपुषम् ॥ ४ ॥

धीर पुरुषों के द्वारा आदृत श्रीरघुपति रूपी भगवान् नारायण की दया से तो लक्ष्मी घर में आती है, अपार विपदा भी कारागार को चली जाती है और रति के पति कामदेव के प्रभाव से पीड़ित हुई, जघन के भार से झुकी हुई, अतीव सुन्दर स्त्री आराधना करती हुई अनुगामिनी बन कर सेवा करती है। तो उसी बादलों के समान सांवले शरीर वाले रघुपति श्री रामचन्द्र की आराधना मैं यहां अपने मन में कर रहा हूं।

विशेष— राध्नोतीति राधनी, आराधनपरा।

सिद्धाधिपमिते वर्षे वैक्रमे मासि फाल्गुने।
पीठे जालन्धरे शेराठाण-ग्राम-निवासिनः ॥ ५ ॥
अवस्थी-बदरीदत्त-शर्मणो वेश्मनि स्थितः।
तस्य प्रार्थनया रुच्यं समस्यापूर्तिरूपकम् ॥ ६ ॥
श्रीरामचन्द्र-सम्बद्धमश्वधाटी-चतुष्टयम्।
स्तुतिरूपं विनिरमाद्विद्वानमृतवाग्भवः ॥ ७ ॥

वि० सम्वत् १९८७ में, फाल्गुन के महीने में, जालन्धरपीठ (कांगड़ा) में, शेराठाण ग्राम में निवास करने वाले बदरीदत्त शर्मा अवस्थी के घर में ठहरे हुए विद्वान् अमृतवाग्भव ने उसकी प्रार्थना से समस्यापूर्तिमय इस श्रीरामचन्द्र की सुन्दर स्तुति का निर्माण अश्वधाटी नामक छन्द के चार श्लोकों में किया।

विशेष—"कान्तं मनोरमं रुच्यम्" (अ. को. ३-१-५२)

इत्याचार्यश्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतं
समस्यापूर्तिरूपं श्रीरामाश्वधाटीचतुष्टयं सम्पूर्णम्।

श्रीमान् आचार्य अमृतवाग्भव के द्वारा निर्मित
यह समस्या पूर्ति रूपी श्री
रामाश्वधाटी चतुष्टय पूरा हो गया।

७. अवधूताभिवादनम्

अवधीरित-वेष-भाषितानाम्
अमृतावर्षि-महानुभाव भाजाम् ।
अवधूत-पदेषु सङ्गतानां
किमु भद्रं किमु वास्त्यभद्रमत्र ॥ १ ॥

विशेष वेष भाषा आदि के प्रति अवहेलना का भाव रखने वाले, अमृत को बरसाने वाले महान् तेज को धारण करने वाले अवधूतों की पदवियों पर पहुंचे हुए महापुरुषों के लिए कौन सी वस्तु भली है और कौन सी बुरी है ?

विशेष – सर्वत्र समदृष्टि से देखने वाले अवधूत प्रत्येक भले या बुरे भाव में अपने स्वात्म-परमेश्वर को ही देखा करते हैं। अतः उनकी दृष्टि में कुछ भी भला-बुरा नहीं, सब शिव ही है।

कुशलं किमतः परं समृद्धं
यदिमे बिभ्रति सन्ततं पुराणम् ।
सुहृदं करुणार्णवं स्वरूपं
भगवन्तं हृदि पापपङ्कशोषम् ॥ २ ॥

इससे बढ़कर समृद्धि युक्त और क्या कुशल हो सकता है कि ये अवधूत अपने हृदय के भीतर करुणा के उस समुद्र भूत, उस स्वात्मस्वरूप, पुरातन परमेश्वर को सतत गति से धारण करते रहते हैं, जो सभी का स्नेही मित्र है और पाप रूपी कीचड़ को सुखा देने वाला है।

विशेष—अवधूत महापुरुष अपने आत्म-स्वरूप को परमेश्वर ही समझते हैं। परमेश्वरता के ऐसे अभिमान से बढ़कर और कौन सी समृद्धि या कौन सा कल्याण हो सकता है? अपनी शिव रूपता के अभिमान के उदय होते ही साधक सर्वथा कृतकृत्य पापरहित और आनन्दित हो जाता है।

नमतां प्रियतां वहन्ति नो ते
न च कुप्यन्त्यवजानतां कदापि।
विचरन्ति महीतलेऽवधूताः
समतायां हृदयं निधाय नित्यम् ॥ ३ ॥

उन्हें प्रणाम करने वालों से वे प्यार नहीं करते और अवहेलना करने वालों पर नाराज़ कभी नहीं होते। अवधूत महानुभाव अपने हृदय को सदैव समता की स्थिति में ठहरा कर भूमण्डल में घूमते रहते हैं।

अहितोऽपि हितोऽपि वा न येषां
हृदयं क्षोभयितुं भवेत् समर्थः।
विससर्ज विधिः सुपेशलांस्तान्
भवसन्ताप-विहानयेऽवधूतान् ॥ ४ ॥

न ही कोई शत्रु और न ही कोई मित्र ही जिनके हृदय में क्षोभ को उत्पन्न कर सकता है, उन अवधूतों की सृष्टि विशेष उदार स्वभाव वाले ब्रह्मा जी ने संसार रूपी सन्ताप को नष्ट करने के लिए ही की है।

विशेष—अवधूत महापुरुष जीवन्मुक्त होते हुए संसृति से मुक्त होते हैं और साथ ही संसार के प्राणियों को भी संसृति से मुक्त होने के मार्ग पर चलाते हैं। इसी प्रयोजन के लिए वे इस संसार में उत्पन्न हुआ करते हैं।

मदनं हरनेत्र-वह्नि-दग्धं
कृपयाऽम्बाऽङ्कुरितं सती चकार।
अवधूत-विमानना-भवेऽग्नौ
पतितं जीवयितुं क एव शक्तः॥ ५॥

भगवान् शिव के नेत्र की अग्नि से जले हुए भस्मीभूत कामदेव को भगवती जगन्माता पार्वती ने कृपा करके पुनः जीवित कर दिया। परन्तु अवधूत महापुरुष का अनादर करने से उत्पन्न हुई अग्नि में पड़े हुए व्यक्ति को भला कौन पुनः जीवित कर सके ?

विशेष—सम्मान से या अनादर से अवधूतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, न ही उनमें कोई प्रतिक्रिया होती है। परन्तु नियति के नियम के अनुसार उनका अनादर करने वाले पातकी लोगों का वैसा विनाश होता है जिससे उन्हें कोई बचा नहीं सकता।

मदनोऽपि यदङ्घ्रि-सेवयासा-
वभिमानं निजमुज्झति क्षणेन।
अवधूय मदं समं समानान्
अवधूतानभिवादयामहे तान्॥ ६॥

हम उन समदृष्टि वाले अवधूतों को प्रणाम करते हैं जिन के चरणों की सेवा करने से कामदेव भी एक साथ ही अपने मद को झाड़ कर अपने अभिमान को भी क्षण भर में ही छोड़ देता है।

विशेष—कामदेव ने बड़े बड़े ऋषि मुनियों पर, यहां तक कि कैलास वासी शिव पर भी अपना प्रभाव जमा दिया। परन्तु अवधूतों पर उसकी भी कुछ चल नहीं सकती। उनके सम्पर्क में आने पर उसका मद भी चूर हो जाता है और अभिमान भी।

अधितिष्ठासुरक्षरांताममृतेनावृतां पुरीं
निगमान्तागमान्त-वेत्तुरवधूतस्य सेवकः ।
निरमान्नाकनीर-वर्षे द्विजवर्यो मधौ सिते
परिपूर्णो हि पूर्णिमायामवधूताभिवादनम् ॥ ७ ॥

अमृत से आप्लावित उस अविनश्वर पुरी में रहते हुए निगमों और आगमों के समस्त सिद्धान्तों की गहराई को जानने वाले (महा) अवधूत महामुनि दुर्वासा के उस सेवक रूप श्रेष्ठ ब्राह्मण ने सं० २०१० में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन अवधूताभिवादन नामक स्तुति का निर्माण किया जो स्वयं परिपूर्ण है ।

विशेष—तात्पर्य यह है कि आचार्य महोदय अपने स्वरूप की परिपूर्णता का अनुभव कर चुके हैं, तभी इस स्तोत्र का निर्माण ऐसी दृष्टि से कर पाए । फिर स्तुतिकर्ता ने तुर्यदशा-रूपिणी अमृतमयी स्थिति में ठहरते हुए इस स्तुति का निर्माण किया । हो सकता है कि इस स्तुति का निर्माण उन्होंने अमृतसर नगरी में किया हो । परन्तु इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता ।

अवधूत-पदे तिष्ठन्नवधूताभिवादनम् ।
स्वप्रीत्यै व्यतनोद्रम्यं विद्वानमृतवाग्भवः ॥ ८ ॥

स्वयं अवधूत-स्थिति में ठहरे हुए विद्वान् अमृत-वाग्भव ने अपने आनन्द के लिए इस अवधूताभिवादन नामक स्तोत्र का निर्माण किया ।

कृतिरियमाचार्य-श्रीमदमृतवाग्भवस्य ।

यह आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव की कृति है ।

८. श्री त्रिगुणेश्वर शिवस्तोत्रम्

विशेष—इस स्तोत्र की रचना सराय कालेखाँ दिल्ली में निर्मित शिव मन्दिर में नर्मदेश्वर शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा करने के अवसर पर की गई थी। इसका पहला संस्करण तभी प्रकाशित हुआ था। दूसरा संस्करण विद्वद्-वरकल श्री ,राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान की ओर से दिल्ली में कुछ ही महीने पहले प्रकाशित हुआ। यह इसका तीसरा संस्करण है जो सानुवाद है।

आदर्शचिक्कणकपोलतलं सुनासं
चञ्चद् बृहच्छ्रवयुगं स्वलिनीलकण्ठम्।
भोगोपम-प्रथित-सुन्दर-दीर्घबाहुं
पद्मासने समुपविष्टमहं स्वतुष्टम्॥ १॥

विशेष—तीसरे श्लोक में स्थित—

ध्यायामि तं हृदि शिवं त्रिगुणेश्वरं स्वम्।

इस वाक्य के ही साथ तीनों श्लोकों में दिए गए गए द्वितीया विभक्ति से युक्त सभी पदों का सम्बन्ध है। अर्थ यह है कि "मैं इस प्रकार के त्रिगुणेश्वर शिव का ध्यान अपने हृदय में कर रहा हूं।

मैं उस त्रिगुणेश्वर शिव का ध्यान अपने हृदय में कर रहा हूं जिसके कपोलतल दर्पण के समान चिकने और चमकीले हैं, जिसकी नाक बहुत सुन्दर है, जिसके दोनों बड़े बड़े कान चमकते रहते हैं, जिसका कण्ठ सुन्दर भौंरों के समान नीलवर्ण का है, जिसके लम्बे-लम्बे और सुन्दर बाज़ू अजगर के शरीर के समान मोटे और विशाल हैं, जो पद्मासन में बैठा हुआ है और अपने में ही सन्तुष्ट है।

शान्तं त्रिनेत्रमलिकेऽब्ज-कलां वहन्तं
नागेन्द्र-चर्म-वसनं भुजगोपवीतम् ।
अन्तर्बहिश्च रमणीयतम-स्वरूपं
विद्यामृताभयवराऽऽश्रयदानदक्षम् ॥ २ ॥

मैं अपने हृदय में उस त्रिगुणेश्वर शिव का ध्यान करता हूं जो शान्त है, जिसके तीन नेत्र हैं, जो हाथी की ताजा चमड़ी को ही वस्त्र के रूप में पहनता है, जो माथे पर चन्द्रमा की कला को धारण किए हुए है, सांपों को ही जिसने यज्ञोपवीत के रूप में पहना है, जिसका स्वरूप भीतर से भी और बाहिर से भी बहुत अधिक रमणीय है, और जो विद्या को, अभयता को तथा आश्रय को देने में अतीव निपुण है।

विशेष—परमेश्वर शिव का अन्तर्मुख स्वरूप आनन्दमयी शुद्ध चेतना है जिसके समान और कोई भी वस्तु कहीं भी मनोरम नहीं है। उनका बहिर्मुख रूप तो अनन्त ब्रह्माण्डों वाला यह सारा प्रपञ्च है जिसका सौन्दर्य भी अनुपम ही है। संसार से मुक्ति शिव ही देते हैं। मुक्त जीव फिर कभी नहीं मरता है। इस तरह से मुक्ति दशा ही अमृत है जिसे देने में वे चतुर हैं।

गौरीं गणेशसहितां दधतं निजाङ्के
गौरं प्रसन्नमुखमम्बुज-लोचनाढ्यम् ।
गङ्गां स्वमूर्धनि जटापटले दधानं
ध्यायामि तं हृदि शिवं त्रिगुणेश्वरं स्वम् ॥३॥

भगवती गौरी को गणेश जो के समेत अपनी गोद में धारण करने वाले, गौरवर्ण वाले, प्रसन्न मुख वाले, कमल के

समान सुन्दर नेत्रों से युक्त और अपने सिर पर जटाओं के समूहों के भीतर गंगा जी को धारण करने वाले मेरे अपने स्वात्मस्वरूप तथा त्रिगुणमय प्रपञ्च के ईश्वर उस शिव का ध्यान में अपने हृदय में कर रहा हूँ।

विशेष—शिव ही स्वयं जीवों के रूप में प्रकट होता रहता है। अतः अद्वैत दृष्टि से सम्पन्न साधक उसे स्वात्मस्वरूप ही समझता है। इसीलिए उसे 'स्वम्' ऐसा कहा गया है।

ब्रह्मा हरिर्हर इति त्रिगुणीमतीत्य
यस्तन्मयो वरकलो जयति त्रिलोक्याम्।
विश्व-प्रपञ्च-रचना-चतुराय मह्यं
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणेश्वराय ॥ ४ ॥

जो त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीन कारणों से तो उत्तीर्ण है और जो उन तीनों कारणों के रूप में ठहरता है, जिसकी सृष्टि-संहार आदि की कला अतीव उत्तम है, वही त्रिलोकी में सर्वश्रेष्ठ है, अतः उसी की जयकार हो। विश्वात्मक प्रपञ्च की रचना करने में चतुर उस मेरे स्वात्मस्वरूप भगवान् त्रिगुणेश्वर को हमारा प्रणाम हो।

विशेष—तीन गुणों में से रजोगुण का स्वभाव होता है प्रवृत्ति। उससे सृष्टि होती है। जिसका सम्पादन ब्रह्मा जी करते हैं। तमोगुण का स्वभाव होता है भारीपन और प्रवृत्ति का ढीलापन। उससे सृष्ट जगत् कुछ समय के लिए ठहरा रहता है। इस स्थिति के मुख्य देवता हैं भगवान विष्णु। प्रमेय जगत् को प्रमातृतत्त्व में लय करने को संहार कहते हैं। उससे आत्म आनन्द निखर उठता है। ऐसा स्वभाव सत्त्वगुण का होता है क्योंकि वह सुखमय है। इस संहार के मुख्य देवता भगवान् रुद्र हैं। इन तीन कारणों में एक एक गुण की

प्रधानता है। इसीलिए इनके शरीर भी तीन रंगों के होते हैं, क्योंकि रजोगुण को लाल, तमोगुण को सांवला और सत्त्वगुण को श्वेत माना जाता है। तीनों ही गुणों के ईश्वर शिव इन तीनों से परे हैं और इन तीनों के रूप में प्रकट होते रहते हैं। सिद्धों की दृष्टि में वस्तु-स्थिति ऐसी ही है।

फिर वे त्रिगुणेश्वर शिव आचार्य महोदय के स्वात्मस्वरूप ही हैं। इसीलिए उनके लिए "वरकलो" ऐसे शब्द का प्रयोग किया गया है। आचार्य महोदय के वंश का नाम तो वरकल (वड़कले) ऐसा ही है। इसी दृष्टि से "मह्यम्" कहा गया है।

यं वैद्यनाथ इति वैद्यजना वदन्ति
मृत्युञ्जयं यमिह मर्त्यजनाः स्तुवन्ति।
शं कांक्षिणः स्वमिह शङ्करमामनन्ति
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणेश्वराय ॥ ५ ॥

जिस शिवजी को वैद्य लोग वैद्यनाथ कहते हैं, इस संसार में मर्त्यप्राणी 'मृत्युञ्जय' इस नाम से जिसकी स्तुति करते हैं, परम कल्याण रूपी शान्ति को चाहने वाले जिस स्वात्मस्वरूप शिव को शंकर कहते हैं उसी त्रिगुणेश्वर भगवान् शिव को प्रणाम हो।

विशेष – वैद्यनाथ आचार्य महोदय का अपना नाम था। इस नाम से स्वात्मस्वरूप शिव को प्रणाम किया गया है।

वाचो बृहस्पतिममुं निगदन्ति तिस्रो
वेदत्रयी सततमेनमिह स्तवीति।
अग्नित्रयी ज्वलति यं श्रितवत्यजस्रं
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणेश्वराय ॥ ६ ॥

वैखरी आदि तीनों ही वाणियां उसे बड़े-बड़े भुवनों और भुवनेश्वरों का पति बताती हैं। तीनों वेद सदैव उसकी स्तुति करते हैं। फिर जिसका आसरा ले करके ही तीनों होम-अग्नि सदा जलते रहते हैं उस भगवान् त्रिगुणेश्वर को हमारा प्रणाम हो।

विशेष—तीन वाणियां वैखरी, मध्या और पश्यन्ती यहां अभि-प्रेत हैं। चौथी परावाणी में शब्द और अर्थ में परस्पर भेद होता ही नहीं। धर्म के प्रतिपादक तीन वेद—ऋक्, साम और यजुः हैं। चौथा वेद अथर्व तो व्यावहारिक ज्ञान का ही प्रतिपादक हैं। तीन होम-अग्नि हैं गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि।

धामत्रयी परमधामनि सापि यस्मिन्
विश्रान्तिमेति परनिर्वृतिभावरम्ये।
स्वेभ्यो ददाति कृपया तदपि प्रसन्नस्
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणेश्वराय॥ ७॥

वे गार्हपत्य आदि तीनों होम-अग्नि भी, अथवा शास्त्रों में प्रसिद्ध प्रमाण-प्रमेय-प्रमाता रूपी तीनों ही तेज जिस परम आनन्दरूपता से अतीव रमणीय बने हुए चित्प्रकाश रूपी परम तेज में ही विश्रान्ति को प्राप्त करते हैं, उस परम तेज को भी जो प्रसन्न होने पर कृपा करते हुए अपने भक्तों को दे दिया करते हैं, उस भगवान् त्रिगुणेश्वर को हमारा प्रणाम हो।

विशेष—शैव दर्शन की परम्परा में प्रमाण को सूर्य, प्रमेय को चन्द्रमा और प्रमाता को अग्नि नाम दिये गये हैं। तीनों का ही आधार परमेश्वर चित्-प्रकाश है जो स्वभाव से ही आनन्द घन है। भगवान् शिव अपने भक्तों को उसी चिदानन्दघन प्रकाशरूपता की स्थिति पर पहुँचा देते हैं।

शक्तित्रयी घनतयाऽऽश्रयते यतोऽमुं
तुर्योऽपि पञ्च तनुते सततं कृतीः स्वाः ।
पञ्चाननः सुरनराऽसुरसङ्घ-पूज्यस्-
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणेश्वराय ॥ ८ ॥

क्योंकि इच्छा आदि तीन शक्तियाँ एक घन रूप में ठहर कर उसी का आश्रय लेती हैं इसीलिए वह चौथा अर्थात् अद्वैत चित् प्रकाश रूपी तुरीय तत्त्व होता हुआ भी सतत गति से अपने सृष्टि आदि पाँच पारमेश्वरी कृत्यों को विकास में लाया करता है। पञ्च शक्ति रूपी पाँच मुखों वाला जो परमेश्वर दवताओं, असुरों और मनुष्यों के समूहों के द्वारा पूजित होता रहता है उस भगवान् त्रिगुणेश्वर शिव को हमारा प्रणाम हो।

विशेष—इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीन शक्तियां हैं। परमेश्वरता से सम्पन्न चित् प्रकाश की स्थिति में ठहरना तुरीया दशा कहलाती है। परमेश्वर के पांच परमेश्वरी कृत्य हैं—(१) सृष्टि, (२) स्थिति, (३) संहार, (४) विधान (स्वरूप गोपन) और (५) अनुग्रह (स्वरूप-प्रकाशन)। शिव जी के पांच मुख होते हैं (१) ईशान, (२) तत्पुरुष, (३) सद्योजात, (४) वामदेव और (५) अघोर। इनमें क्रम से चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया, इन में से एक एक शक्ति की अभिव्यक्ति प्रधानतया हैंोती है। देवता सत्त्व गुण प्रधान, मानव रजोगुण प्रधान और असुर तमोगुण प्रधान होते हैं।

बभूत्यवांस्त्रिदिव-सेवित-पादपोऽद्य
नाकार्थिनां विजयते सुखदः परोऽर्थः ।
वह्नीन्दु-सूर्य-नयनः परमार्थसार-
कल्पः श्रियेऽस्तु स सतां त्रिगुणेशलीलः ॥ ९ ॥

आज उस त्रिगुणेश्वर भगवान् शिव की जय जयकार की जा रही है जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त हैं, देवताओं के द्वारा पूजित हुए अपने पैरों से ही जो भक्तों की रक्षा करते हैं, स्वर्ग को चाहने वालों को जो अभीष्ट सुख देने वाले हैं, जो ही वास्तविक परमार्थ तत्त्व हैं, सूर्य चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं तथा जो समस्त विश्व के पारमार्थिक सार के तुल्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के रूप में तीन गुणों के स्वामी बनते हुए जो अपनी लीला का अभिनय करते रहते हैं वे ही भगवान् त्रिगुणेश्वर शिव सज्जनों की लक्ष्मी का वर्धन करें।

स्वनिर्मितेन स्तोत्रेण प्रीणयँस्त्रिगुणेश्वरम्।
शमिच्छति समस्तानामाचार्यामृतवाग्भवः ॥ १० ॥

स्वयं निर्मित स्तोत्र के द्वारा त्रिगुणेश्वर शिव को प्रसन्न करते हुए आचार्य अमृतवाग्भव सभी का कल्याण चाहते हैं।

विशेष—इस स्तोत्र का निर्माण दिल्ली में वि. सं० २०२२ में त्रिगुणेश्वर शिव मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर किया गया।

इति श्री त्रिगुणेश्वरशिवस्तोत्रम्
आचार्यामृतवाग्भवविनिर्मितम्।

यह आचार्यामृतवाग्भव के द्वारा निर्मित त्रिगुणेश्वर शिवस्तोत्र है।

—०—

६. आपूपिकेश्वर-स्तोत्रम्

विशेष—भरतपुर में वि. सं. २०२३ में हलवाइयों के संगठन ने एक धर्मशाला का निर्माण किया और वहां शिवालय की प्रतिष्ठा के अवसर पर आचार्य महादेय ने इस स्तोत्र की रचना की। आपूपिक हलवाई को कहते हैं। तो यह हलवाइयों के ईश्वर शिव की स्तुति है।

आशंसवो निजशिवं स्वसमाज-मुख्या
आपूपिका भरतपूर्भुवि बुद्धिमन्तः।
निर्माय सम्प्रति यथारुचि धर्मशालां
देवेश ते वसतयेऽत्र निमन्त्रयन्ते ॥ १ ॥

भरतपुर के हलवाइयों के समाज के बुद्धिमान् मुखिया महानुभाव अपने समाज के कल्याण की अभिलाषा से अपनी रुचि के अनुसार धर्मशाला का निर्माण करके, हे देवताओं के भी ईश्वर शिव, आपको यहाँ निवास करने के लिए निमन्त्रण दे रहे हैं ॥ १ ॥

द्वाराद् बहिश्च विपणौ मधुराभिधानाद्
आपूपिकैर्विरचिते भवनेऽत्र रम्ये।
आस्वादयन् घृतमयान् मधुरानपूपान्
आपूपिकेश्वर महेश सदा प्रसीद ॥ २ ॥

हे ग्रापूपिकेश्वर भगवान् शिव, ग्राप मथुरा द्वार (गेट) के बाहिर बाजार में हलवाइयों के द्वारा निर्मित इस सुन्दर भवन में (उपस्थित रहते हुए) घी में बनाए हुए मज़ेदार मालपूड़ों का स्वाद लेते हुए सदा उन पर प्रसन्न होते रहिए।

ग्रापूपिका विरचयन्तु पदार्थजातान्
लोकम्पृणान् बहुविधान् घृतपूरपूतान्।
तुभ्यं निवेद्य परितोष्य जनान् प्रभूतं
वित्तं महेश कृपया तव ते रमन्ताम्॥ ३॥

हे भगवान् महेश्वर, हलवाई लोग घी के प्रवाहों से पवित्र बने हुए ग्रौर लोगों को सन्तुष्ट करने वाले बहुत प्रकार के पदार्थ समूहों को तैयार करते रहें। वे उन्हें तुझे निवेदन करके ग्रौर लोगों को सन्तुष्ट करके तुम्हारी कृपा से खूब धन पाकर उससे रमण करते रहें।

ग्रापूपिकेश्वर महेश्वर वासमत्र
प्रेम्णा सतामधिपुरं कृपया कुरुष्व।
दृष्ट्वा दयाभरितया सततं स्वदृष्ट्या
ग्रापूपिकान् रचय सर्वसुखैः समृद्धान्॥ ४॥

हे ग्रापूपिकेश्वर भगवान् शिव, ग्राप सज्जनों के प्रेम से ग्राकृष्ट होकर इस भवन में कृपा करके निवास कीजिए। सदैव दया से भरी रहने वाली ग्रपनी दृष्टि से देखकर हलवाइयों को सदा सभी सुखों से समृद्ध बनाते रहिए।

विज्ञापयत्यमृतवाग्भवनाभिधेय
ग्राचार्य एष भवतोऽनुभवं स्वकीयम्।
ग्रापूपिकेश्वरनुतिं पठतामिमां हि
पूर्तिं समेति सकलापि पदार्थयाच्ञा॥ ५॥

यह अमृतवाग्भव नाम वाला आचार्य आप लोगों को अपने इस अनुभव को बता रहा है कि इस आपूपिकेश्वर-स्तुति को पढ़ने वालों की सारी वस्तु-कामना पूरी हो जाया करती है।

इत्याचार्य-श्रीमदमृतवाग्भव-प्रणीतम्
आपूपिकेश्वरस्तोत्रम्।

यह आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव द्वारा निर्मित
आपूपिकेश्वर स्तोत्र है।

—०—

महामहिम आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव जी के
प्रकाशित ग्रन्थ

१. महानुभव शक्तिस्तवः	१-००
२. श्री परशु राम स्तोत्रम् (हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद सहितम्)	अमूल्य
३. श्री विंशतिका शास्त्रम् (हिन्दी संस्कृत व्याख्यासहितम्)	
४. सप्तपदी हृदयम् (संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहितम्)	१.५०
५. सञ्जीवनी दर्शनम् (हिन्दी अनुवाद सहितम्)	१.५०
६. सङ्क्रान्ति पञ्चदशी (हिन्दी गद्य-पद्य अनुवाद सहिता)	१.००
७. 'प्रभो शम्भो' (पर शिव प्रार्थना-सिद्ध-महामन्त्र) हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद सहितम्)	अमूल्य
८. मन्दाक्रान्ता स्तोत्रम् (हिन्दी व्याख्या-सहित)	५.००
९. मन्दाक्रान्ता स्तोत्रम् (हिन्दी अनुवाद सहितम्)	३.००
१०. श्री आत्म विलासः (सुन्दरी नामक हिन्दी व्याख्या सहित)	२०.००
११. श्री सिद्धमहारहस्यम् (हिन्दी व्याख्या सहितम्)	१०.००

१२. श्रीमदमृतसूक्ति पञ्चाशिका (संस्कृत व्याख्या सहिता) ३.००

१३. श्री राष्ट्रालोक: (हिन्दी अनुवाद सहित:) १.५०

१४. अमृत स्तोत्र संग्रह (हिन्दी टीका सहित) ३.००

उपरोक्त सभी ग्रन्थों के मिलने का पता:—

(१) श्री दुर्गादत्त शर्मा, ए-७२ अमृतपथ,
जनता कालोनी, जयपुर (राजस्थान)

(१) श्री रत्नलाल जैन, स्टाफ क्वाटर न०ए-१
दिल्ली हाई कोर्ट, शेरशाह रोड, नई दिल्ली-३

—०—